International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 159-161

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 159-161
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-05-2017
Accepted: 29-06-2017

प्रेम सिंह
शोधार्थी (पी.एच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भरत

Correspondence
प्रेम सिंह
शोधार्थी (पी.एच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भरत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स "अथ" "ऋग्वेद में मानव के सामाजिक अधिकार"

प्रेम सिंह

प्रस्तावना

ऋग्वेद संसार की सबसे प्राचीनतम कृति माना जाता है। प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी विद्वान् इसको विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। [1] सभी वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऋग्वेद का ही नाम सर्वप्रथम लिया गया है। [2] ऋग्वेद में आदि से अन्त पर्यन्त 'अहम्' की भावना न होकर 'वयम्' और 'नो' की भावना विद्यमान है। [3] ऋग्वेद की इसी नो और नः की भावना ने एक उज्ज्वलतम समाज को को जन्म दिया और सम्पूर्ण पृथ्वी पर व्याप्त मानव–समाज का कल्याण किया। ऋग्वेद में किसी एक मानव के कल्याण की कामना नहीं की गई है अपितु सम्पूर्ण मानव–जाति के कल्याण की कामना की गई है। ऋग्वेद में मानव विशेष के कल्याण से सम्पूर्ण विश्व–समाज का कल्याण नहीं होता वरन् सभी मानवों के कल्याण से ही सम्पूर्ण विश्व–समाज का कल्याण होता है, के दर्शन होते हैं। [4] ऋग्वेद में मानव अधिकारों से सम्बन्धित विपुल सामग्री विद्यमान है। अधिकारों के सन्दर्भ में ऋग्वेद के मन्त्रों विवेचन से पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की इस सन्दर्भ में परिकल्पना विवेचनीय है। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषण पत्र की उद्देशिका में ही यह स्वीकार किया गया है कि विश्व को न्याय, स्वतन्त्रता एवं शान्ति की स्वीकृति, मानव समाज के सभी सदस्यों की गरीमा उनके अहस्तान्तरणीय तथा समान अधिकारों की नींव है। [5] संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 13 में कहा गया है कि वह (संयुक्त राष्ट्र संघ) मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रता को बिना जाति, भाषा, लिंग धर्म आदि के विभेद के प्रोत्साहित करे। [6] लुईस हेन्किन ने भी कहा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की किसी भी कथा में मानव अधिकारों का विशिष्ट स्थान होगा। [7] मानव अधिकारो के परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ और आधुनिक संस्थाओं एवं आधुनिक विद्वानों के द्वारा जो उद्भावनाएँ की गई हैं, वे नवीन नहीं हैं। वह तो सनातन भारतीय परम्परा [8] का ही पुनर्–वाचन मात्र है।

(क). जीवन जीने का अधिकार

ऋग्वेद की दृष्टि में सम्पूर्ण पृथ्वी पर स्थित प्रत्येक जीवधारी को, जिसे भी परमात्मा ने प्राणों से मण्डित किया है, जीवन जीने का अधिकार है। फिर वह एक साधारण पक्षी क्यों न हो– हे शकुनि [9]! तुम्हें श्येन [10] पक्षी न मारे। वह बलवान् वीर एवं धनुर्धारी होकर तुम्हें प्राप्त न कर सके। दक्षिण दिशा में बार–बार शब्द करके एवं मंगलकारी होकर हमारे लिए प्रियवादी बनो। [11] एक साधरण शकुनि पक्षी के प्रति ऋग्वेद में व्यक्त इस चिन्ता से परमात्मा के सर्वोत्तम कृति में मनुष्य के प्रति आंकलित महत्ता का अनुमान स्वयमेव किया जा सकता है। मनुष्यों के जीवन को न्यूनातिन्यून सौ वर्ष तक होना चाहिए, ऐसी मानसिकता के साथ जीने वाले को स्वयं देवता भी सुरक्षा प्रदान करते हैं। [12]

ऋषि कहता है कि हे परमेश्वर ! हमारी आयु को मत चुराओ [13], हमारी हिंसा मत करो [14]। समाज में किसी एक व्यक्ति का अधिकार रक्षण दूसरे व्यक्ति की कर्त्तव्यपूर्ति पर आधारित होता है, इस तथ्य को बोधगम्य बनाने के लिए ऋषि की वरुण देवता से प्रार्थना है कि हे वरुण देवता ! अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के वध करने और किसी पर आघात पहुँचाने के लिए हमें प्रेरित मत करो, और क्रोध के निमित्त स्वयं लज्जा अनुभव करने वाले को दण्ड देने के लिए भी मत प्रेरित करो। [15] ज्ञान और कर्मों को करने के लिए प्रेरित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हे परमेश्वर ! सब दिन हमें उत्तम मार्ग से प्ररित करे और हमारी आयु को बढ़ाये। [16]

ऋषि विश्व और अपनी सन्तान की रक्षा के लिए अग्नि देवता से प्रार्थना करता है कि हे अग्नि देवता ! हमारे पुत्र–पौत्रों की रक्षा करो और विश्व के शरीरों की सावधन होकर रक्षा करो। [17] यदि किसी मनुष्य से ऋषि को भय भी है तो ऋषि उसका स्वयं अहित नहीं करता है, अपितु परमेश्वर से उसे दण्ड देने के लिए प्रार्थना करता है। [18] इस दृष्टान्त से मानव का मानव के प्रति सम्मान दृष्टिगोचर होता है।

ऋषि समस्त पृथ्वी पर व्याप्त जीवधारियों के कल्याण की मंगलकामना करता हुआ कहता है कि हे ईश्वर ! विश्व के प्रत्येक घर में सप्तरत्न स्थापित करके, आप हमारा मंगल करें। द्विष्पदों और चतुष्पदों को सुख प्रदान करें। [19] आन्तरिक शान्ति के लिए मन के कल्याणकारी होने की भी कामना की गई है [20], क्योंकि जिस प्रकार शोभन सारथि अश्वों को आगे चलाने के लिए प्ररित करता है और वेगवान् घोड़ों का चाबुक से नियमन करता है उसी प्रकार मन भी मनुष्य के कार्यों को प्रेरित करता है और नियमन भी करता है। [21]

जीवन में रोगादि बाधाओं से मुक्त होकर ही पूर्णायु प्राप्त होती है। संसार के सभी प्राणी रोगादि बाधाओं से मुक्त हों इस प्रकार की कामना करता हुआ ऋषि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे सोम देवता ! हम स्तोताओं तथा द्विष्पदों चतुष्पदों को रोगों से मुक्त कर दो [22] और हमारी आयु को बढ़ा दो। [23] हमें ऐश्वर्यों से पूर्ण कर दो। [24] ऋग्वेद में जीवन जीने का अधिकार केवल शब्द मण्डित नहीं है वरन् पूर्ण सत्यता से युक्त है। तत्त्वान्वेषी ऋषियों ने सम्पूर्ण संसार के कल्याण की मंगलकामना की, न कि किसी वर्ग विशेष या देश विशेष की। यह मंगलकामना वसिष्ठ ऋषि के इस मन्त्र से भी दृष्टिगोचर होती है–

> देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः। [25]
> ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।
> ऋग्. 10/63/15।

अर्थात् वसिष्ठ ऋषि ने अमर देवताओ ं की स्तुति की, जो सम्पूर्ण भुवनों एवं पृथ्वी पर श्रेष्ठ हैं, वे हमें विस्तृत अन्न दें और सदैव हमारा कल्याण करें।

(ख) वाक् स्वातन्त्र्य का अधिकार

स्वतन्त्रता ही जीवन है। स्वतन्त्रता के अभाव में मानव के व्यक्तित्त्व का विकास सम्भव नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में सभी मनुष्यों को स्वतन्त्र वाक् का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक प्रजातान्त्रिक सरकार इस स्वतन्त्रता को महत्व देती है। इसके अभाव में जनता की तार्किक एवं आलोचनात्मक शक्ति को जो प्रजातान्त्रिक सरकार के समुचित संचालन के लिए आवश्यक है, को विकसीत करना सम्भव नहीं है। वाक् का सृजन परमेश्वर ने किया। वाक् समुद्र के समान है जिसका कभी क्षय नहीं होता है। [26] ऋग्वेद में स्त्री हो या पुरुष, वृद्ध हो या बालक सभी को समान रूप से बोलने का अधिकार है। [27] आचार्य मनु कहते हैं कि सर्वदा प्रिय सत्य बोलना चाहिए, अप्रिय असत्य नहीं और न ही प्रिय असत्य। यही वेद विहित धर्म है। [28]

(ग) समानता का अधिकार

सभी मनुष्यों को परमात्मा ने सृजित किया है। [29] सभी मानव एक जैसे ही होते हैं। सभी का रक्त लाल होता है। परन्तु खेद है कि सभी मानव सभी मानवों के प्रति समान व्यावहार नहीं करते हैं। भारतीय उच्चादर्शों का समाज जाति, धर्म आदि के बन्धनों से जकड़ा हुआ है। जाति, धर्म आदि बन्धनों के कारण मानव, मानव के अतिरिक्त कुछ और ही हो गया है। मानव की नैसर्गिक भावनाओं पर अल्पकालिक उपमानों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। इसी कारण से आज मानव–मात्र का सम्मान समाप्त हो गया है। वर्तमान में एक मानव दूसरे मानव को इसलिए पीड़ा देता है क्योंकि वह उसकी जाति और धर्म का नहीं है। उच्च–शिक्षण संस्थानों में भी जाति, धर्मगत भेद–भव देखने को पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यद्यपि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में जाति, धर्म, मूलवंश, लिंग, एवं जन्मस्थान आदि के आधार पर विभेद का प्रतिषेध है। ऋग्वैदिक काल में सभी मानवों को समान रूप से बोलने की, समान रूप से भ्रमणादि की एवं समान रूप से समिति में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रा प्राप्त थी। [30] ऋग्वेद में उच्चता की भावना पर कटु प्रहार किया गया है एवं स्वयं को उच्च मानने वालों को दण्ड का भागी माना गया है। [31] इस प्रकार ऋग्वेद में सभी प्राणियों को समानता का अधिकार प्राप्त है।

उपसंहारः–

ऋग्वेद एक ऐसे आदर्श समाज की छवी प्रस्तुत करता है जिसमें सभी मानव परस्पर संयुक्त हैं। समाज में सभी श्रृंखला की कड़ियाँ समान रूप से एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। [32] अधिकार और कर्त्तव्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। व्यक्तिगत रूप से कर्त्तव्यच्युत होना अन्ततः व्यक्तिगत या समूहगत अधिकार हनन के रूप में परिलक्षित होता है। इसी कारण ऋग्वेद अधिकारों के पूर्व कर्त्तव्यों का स्थान निरुपित करता है। कर्त्तव्यों की धरा पर ही अधिकारों की इमारत टिकी है। इस प्रकार अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के सामांजस्य पर आधारित ऋग्वैदिक समाज सभी मानवों के अधिकारों का संरक्षक था।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 45।
2. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। ऋग्. 10/90/9।
   अग्नेर्ऋग्वेदो वायुर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। शत.ब्रा. 11/5/8/3।
3. सचस्वा नो स्वस्तये। ऋग्.1/1/9।
   स् नो वसून्या भर।। ऋग्. 10/191/2।
4. स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धाः स्वस्ति नः पूषा विश्वदेवाः।
   स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। ऋग्. 1/89/6।
   शं नो मित्रः शंवरूणः शं नो भवत्यर्यमा।
   शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्रमः।। ऋग्.1/90/9।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषण–पत्र।
6. संयुक्त राष्ट्र चार्टर, अनुच्छेद–13।
7. द.यू.एन.एण्ड ह्यूमन राइट्स, लुईस हेन्किन, इण्टरनेशनल आर्गनाइजेशन(1965), पृ.504।
8. यत्र विश्वं भवेत्येकनीड़म्। शुक्ल यजु. 32/8।
9. शकुनि (सक+उनि) सुन्दर चिड़िया, पृ.882, संस्कृत–इंग्लिस–हिन्दी शब्दकोश, उमा प्रसाद पाण्डेय।
10. श्येन (श्यै+इनन्) बाज, पृ.916, ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी।
11. मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता।
    पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमंलोभद्रवादी वदेह।। ऋग्. 2/42/2।
12. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तांछतमु वसन्तान्।
    शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुर्नदुः।। ऋग्. 10/161/4।
13. मा नः आयुः प्रमोषीः। ऋग्. 1/24/11।
14. मा नो हिंसीत्। ऋग्. 10/121/9।
15. मा नोवधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
    मा हृणानस्य मन्यवे।। ऋग्. 1/25/2।
16. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
    प्र ण आयूंषि तारिषत्। ऋग्. 1/25/12।
17. रक्षणो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वे अप्रयुच्छन्। ऋग्. 10/4/7।
18. (क) यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
    स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः।। ऋग्. 8/18/12।
    (ख) यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
    देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम्।। ऋग्. 6/75/19।

19. दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे। ऋग्. 6/74/1।
20. (क) भद्रं नो अपि वातम मनः। ऋग्. 10/20/1।
(ख) तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। शुक्ल यजु. 34/1–6।
21. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेमीयतेऽभीर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं ।। शुक्ल यजु. 34/6।
22. सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे।
अनमीवा इषस्करत्।। ऋग्. 3/63/14।
23. अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः। ऋग्. 3/63/15।
24. नो वसुन्या भर। ऋग्. 10/191/1।
25. ऋग्वेद 10/63/15।
26. देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। ऋग्. 8/100/11।
वाग् वै समुद्रो न वै वाक् क्षीयते, न समुद्रः क्षीयते। ऐतरेय ब्रा. 5/16।
27. (क) स्त्री– अहमेव स्वयमिदं वदामि। ऋग्. 10/125/5।
(ख) पुरुष– नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः। ऋग्. 2/15/10।
(ग) सभी के लिए– उत ब्रुवन्तु नो। ऋग्. 1/4/5, वाचो मनुष्याः वदन्ति। ऋग्. 1/104/45।
28. सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।। मनु. 4/138।
29. सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।। गीता 9/7।
30. (क) सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते।। ऋग्. 10/191/2।
(ख) समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तेषाम्।
स्मानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।। ऋग्. 10/191/3।
(ग) समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहाति।। ऋग्. 10/191/4।
31. जनं वज्जिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रुधाय येष्वस्मि। ऋग्. 6/19/12।
32. मित्राय पंच येमिरे जना अभिष्टिशवये। ऋग्. 3/59/8।